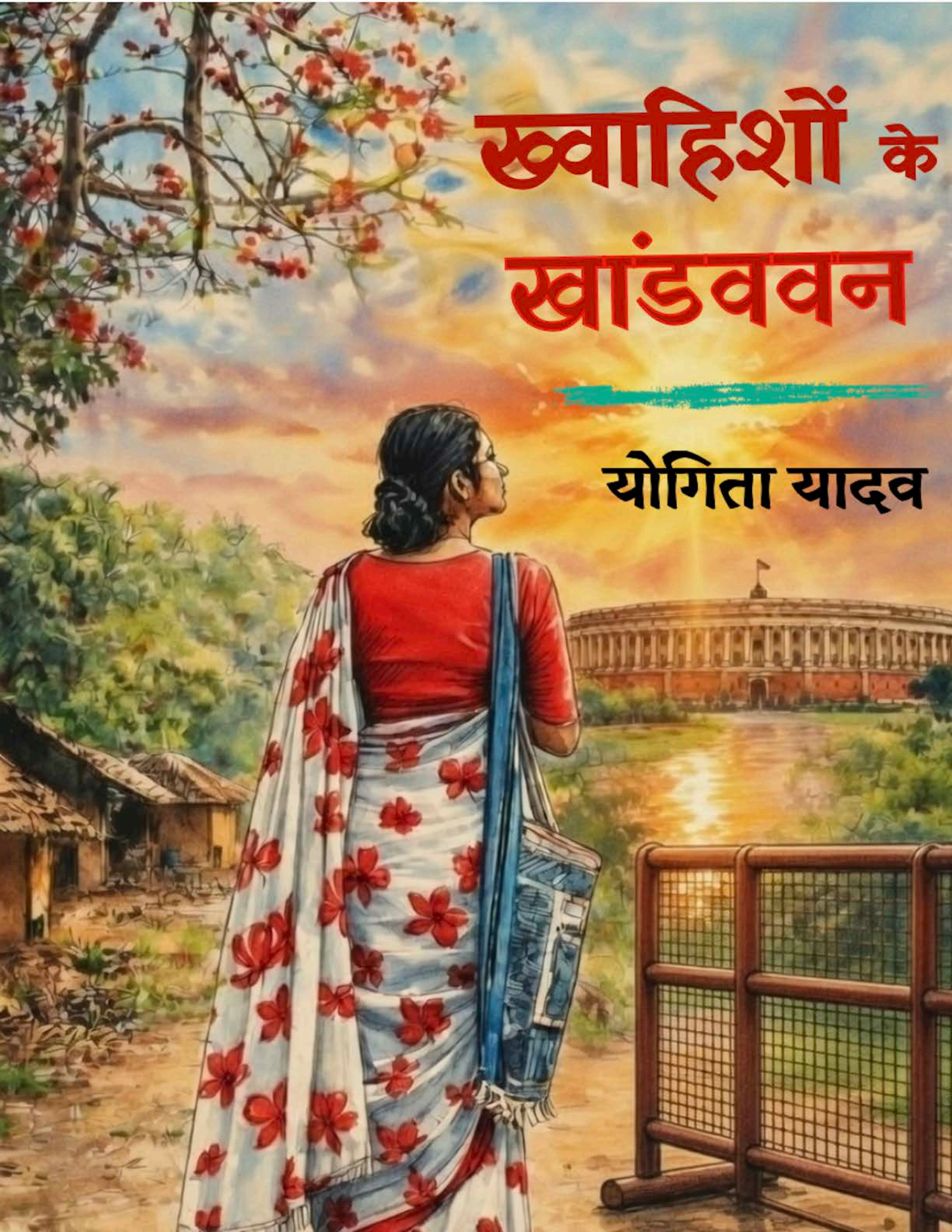

ख्वाहिशों के
खांडववन
योगिता यादव

# ख्वाहिशों के खांडववन

## योगिता यादव

*प्रकाशक: नॉटनल*

*प्रकाशन: मार्च, 2026*

*© योगिता यादव*

# मेरी बात

हमारी स्मृतियों में एक कथा थी। महाभारत काल में कौरवों के कुनबे से जब मतभेद हुआ तो कुनबे के बड़े बुजुर्गों ने पांडवों को अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए एक अलग इलाका दे दिया। यह इलाका था खाण्डवप्रस्थ। जामुन, कीकर, बेल, अमलतास और धतूरों से भरा खाण्डववन का यह अधबंजर इलाका पांडवों को बिल्कुल पसंद नहीं आया। यह नापसंदगी जब श्री कृष्ण के सामने व्यक्त की गई तो उन्होंने विश्वकर्मा जी को बुलाया और निर्देश दिया कि वे इस मुश्किल, अधबंजर इलाके को पांडवों के लिए तैयार करें।

विश्वकर्मा जी ने अपने निर्देशन में खाण्डववन को खूबसूरत इंद्रप्रस्थ में तब्दील कर दिया। ऐसा मायावी इंद्रप्रस्थ जहां फर्श पर ऐसा लगता था कि समुद्र हिलोरें ले रहा है। और छत जैसे कोई तारामंडल। यानी न जमीन मौलिक थी और न आसमान। सबमें एक तरह के छद्म का मिश्रण कर उसे आकर्षक बनाने का जतन किया गया और इस बार पांडव अभिभूत हो गए।

दुर्भाग्य से मेरे इस खाण्डववन को जितने भी राजा मिले वे छद्म में सौंदर्य देखना चाहते हैं। मौलिक अपनापन नहीं वीआईपी इलाकों में महंगे फलो और फूल सजाए जाते हैं। यहां के तालाबों में सफेदे के पेड़ लगाकर उन्हें सुखाया गया। जिस गली से आते-जाते मैं बड़ी हुई हूं, उसका नाम है भूतों वाली गली अथक, अदम्य परिश्रम करने वाले उन लोगों की गली, जो दिन-रात अपने खेतों में मेहनत करने में जुते रहते थे। जैसे कोई भूत अपने काम में

तल्लीन रहता है। अब न मेहनत करने वाले वे लोग हैं, न वैसी दिखती है वह गली । बहुत कुछ बदल गया है। वीआईपी मनभावन हवाओं के लिए इसकी मौलिकता पर मिट्टी डाल दी गई है। ऐसी ही मिट्टी साहित्य में भी डाली जा रही है, जहां यह शहर शहर न हुआ सपने नोंचने वाली मंडी साबित किया जा रहा है। पर सवाल यह है कि आखिर ये मंडी सजाई किसने और कौन है जो लगातार इसकी धूर्तताओं में विस्तार करता जा रहा है ? प्रश्न तो अभी बहुत हैं। सुनीता के संघर्ष के बहाने मिलकर ढूंढेंगे इनके जवाब ।

# 1

"रांड रंडापा तब काटे जब रंडुवे काटन दें", मां ने दांत पीसते, घुर्राते हुए कहा, जब मैंने चाचा जी के लाए आटा चक्की वाले के रिश्ते से इनकार कर दिया और कहा कि मुझे शादी करनी ही नहीं है, मैं अकेले बिना शादी के भी रह सकती हूं।

“पढ़-लिख रही हूं, खुद कोई नौकरी करूंगी। आप लोगों पर बोझ नहीं बनूंगी।" पर उस वक्त मां नहीं उसके पीछे बाबूजी का संबल बोल रहा था। जो मौन स्वीकृति से यह साबित करता था कि मां जो कर रही है सही है। उस वक्त मेरा संकल्प भी खोखला था और दावा भी । पर मेरा इनकार सच्चा था। मैं शादी तो करना चाहती थी पर आटा चक्की चलाने वाले उस कुम्हार की औलाद से नहीं तब मेरी आंखों में कॉलेज का एक जाट युवक चढ़ा हुआ था। मैंने चोर नजरों से देखा था कि वह भी मुझ में दिलचस्पी ले रहा है। कॉलेज इलैक्शन में सेक्रेटरी की पोस्ट जीतने के बाद से वह मुझे और अधिक आकर्षित करने लगा था। सिर्फ उसी के लिए मैं वोट डालने पहुंची थी, वरना पढ़ाई का एक भी दिन खराब करने की हैसियत नहीं थी मेरी। उस पर मां थी जो मेरे बाल संवारने के ढंग से ही समझ जाती थी कि आज कॉलेज में पढ़ाई होने वाली है या बाहर कहीं तफरी का प्रोग्राम है।

ऐसा नहीं है कि मां दकियानूसी थी पर उसके उदारवाद और क्रांति की एक सीमा थी। यह मां की ही पहल थी कि हम सभी बहनें बचपन से को-एजुकेशन में पढ़ती आईं थीं। मां की कोशिशों में अब मेरे विद्रोह भी शामिल होने लगे थे। 12वीं होते ही जब चाची-

ताइयां मेरे ब्याह में चाक पूजने की तैयारियां कर रहीं थीं, उससे पहले ही मां ने मेरा समर्थन कर दिया कि मेरी बेटी आगे भी पढ़ेगी। इसके लिए मैं दबे स्वर में मां से लगातार तीन महीने गुहार लगाती रही थी कि मुझे आगे भी पढ़ाई करनी है। पर बाबूजी के सामने बोलने की हिम्मत नहीं हो रही थी।

मैं 12वीं पास की। हर बार की तरह मां- बाबू के बीच मुझे आगे पढ़ाने को लेकर ठीक- ठाक तकरार हुई और हर बार की तरह बाबूजी ने मां की बात मान ली। मां ने मुझे सिर्फ लड़कियों के कॉलेज में फॉर्म भरने को कहा। और मैंने सिर्फ वही कॉलेज छोड़कर सारे कॉलेजों में फॉर्म भरे।

'हूं क्यूं जाऊं मैं लड़कियों के कॉलेज ? जहां मेरा मन करेगा वहां लूंगी एडमिशन, अच्छी परसंटेज है मेरी ।" परसंटेज ने मेरी हिम्मत बढ़ा दी थी।

# 2

घर की पहली लड़की आखिर कॉलेज पहुंच ही गई। कॉलेज के लिए बस में सवार होते हुए मन अजीब तरह से उछल रहा था और पैरों में हल्का कंपन हो रहा था। पैरों का ऐसा ही कंपन तब भी महसूस हुआ था जब मां ने गांव से बाहर कॉलोनी के स्कूल में एडमिशन करवाया था।

गांव के स्कूल में हर साल फर्स्ट आया करती थी। पर हायर सेकेंडरी की पढ़ाई के लिए गांव-गुहाण्ड से बाहर कुछ किलोमीटर दूर कॉलोनी के स्कूल में आना पड़ा। शुरुआत में भाषा को लेकर थोड़ी झिझक थी। यहां के बच्चे ज्यादा स्मार्ट लगते थे। यूनिफॉर्म में मां ने मेरे लिए सलवार कमीज सिए थे पर मैं यहां की लड़कियों की लंबी टांगों पर स्कर्ट देखकर ललचाने लगी थी। अकेले में अपनी टांगों को देखती कि अगर मैं भी स्कर्ट पहनूं तो ये कैसी लगेंगी।

यह लालच भी बहुत दिन बना नहीं रह सका। जैसे ही कमीज ऊंची होने लगी, मैंने मां से स्कर्ट पहनने की जिद ठान ली। आठवीं तक पहुंचते मैंने भी सलवार कमीज पहनना छोड़ दिया। पहले- पहल अपने गंवारपने के कारण सबसे पीछे रही। फिर प्रतिभा के बूते अगले बेंच तक पहुंच गई।

बाद में पता चला कि यहां पिछले बैंचों पर बैठना भी एक ठसक है। फर्स्ट आने का वैसा सिलसिला तो नहीं बन पाया जो गांव के प्राइमरी स्कूल में था पर रही अगली पंक्ति के